महादेवी की साधना • इक्कीसवीं

पुस्तक महल
मेन बाजार, गांधी नगर, दिल्ली-110031

© मुद्राराक्षस

प्रकाशक

जगतराम एण्ड संस
IX/221, मेन बाजार, गांधीनगर
दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण

1992

मूल्य

पचास रुपये

मुद्रक

अजय प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MATHURADAS KI DIARY (Humour & Stire)
by Mudrarakshas
Price : Rs. 50.00

अनुक्रम

परनिंदा सुख उर्फ एरिस्ट्रोक्रेट झाड़ू	7
पुरस्कार प्रसंग	10
सावधान ! आगे जनवादी रेजीमेंट है	14
अध्यक्षता का आनन्द	19
अथ श्री दिल्ली पुलिस पुराणम्	23
काशी विश्वनाथ : शासकीय नियमावली	27
विधायक बिकाऊ हैं···!	32
आलोचना के खतरे	37
ऋणंकृत्वा चर्बी पिवेत	41
पड़ता सिद्धान्त	46
चुनाव चक्र और एकता	51
उत्तर प्रदेश का कीर्तिमान	55
व्यंग्यकार की मेख	59
गरीबी की रेखा के इधर और उधर	64
समीक्षा सुख	68
टेढ़ा उल्लू	72
बड़ा क्या है : सच्चा सुख या सत्ता सुख	77
हिन्दी की शुभचिन्तक	82
ब्लेड युग की साहित्यिक हरकतें	87
बड़े बनने का गुर !	91
भारत भवन से मथुरादास की अपील	96
कम्प्यूटर क्रान्ति	101
उपदेशक की जमीन	105

हिन्दी के शुभचिन्तक

हिन्दी में इन दिनों कुछ हिन्दी वालों ने बड़ा गोलमाल मचा रखा है। वे हैं तो हिन्दी के लेखक लेकिन वकालत दूसरी भाषाओं की करते हैं। हिन्दी के शुभचिन्तकों का खयाल है कि ऐसे पापी लोग बहुत बुरे होते हैं, जिस पत्तल में भात खाते हैं, उसी में छेद कर देते हैं।

हिन्दी शुभचिन्तक का विचार है कि सच्चे हिन्दी-प्रेमी को खाना तो अपनी पत्तल में चाहिए, पर छेद दूसरे की पत्तल में करना चाहिए। मथुरादास इस मुहावरे को लेकर चक्कर में पड़ गए। हिन्दी हिन्दी वालों के लिए ही अब पत्तल-भर रह गई है। भाषा का प्रयोग हिन्दी-प्रेमी न तो कुछ लिखने के लिए करता है, न संवाद के लिए। वह उसमें सींकें गूँथकर पत्तल बना लेता है और उस पर अपना दाल-भात सानने लगता है। भाषा का कैसा उम्दा इस्तेमाल है!

जो ज्यादा चतुर हिन्दी-प्रेमी होता है, वह हिन्दी की पत्तल तो बनाता ही है। मौका निकालकर उससे चन्दे की रसीदबुक भी बना लेता है। चन्दा दो, सम्मेलन कराओ। सम्मेलन से भाषा की बहुत सेवा होती है। मसलन उससे मोटर मिल सकती है, एकाध कोठी भी प्राप्त की जा सकती है और समय-समय पर विदेश यात्राओं का खर्च भी निकल सकता है। जो सम्मेलन हिन्दी-प्रेमी को यह सुख दिला सके, वह साधारण हिन्दी-सेवा तो नहीं। तो इस तरह हिन्दी के अब अनेक रूप होते जा रहे हैं। हिन्दी पत्तल तो है ही, चन्दे की रसीदबुक भी है।

मथुरादास के एक पड़ोसी हैं। वे बड़े कट्टर हिन्दी-प्रेमी हैं। तीनों बच्चों को 'हंप्टी-डंप्टी कॉनवेन्ट स्कूल' भेजते हैं। मथुरादास जब कभी उनके घर जाते हैं तो वे सबसे पहले अपने बच्चों से 'पोयम' सुनवाते हैं—'बा बा ब्लैकशीप···'

उनके एक बच्चे ने 'ट्विंकल-ट्विंकल लिटिल स्टार' भी सीख लिया है। यह गीत सुनवाने के बाद ही वे अपने घिसे-से कैसेट रिकार्डर पर ऊँची आवाज में नाजिया हसन का डिस्को लगा देते हैं। काफी अच्छे हिन्दी-प्रेमी हैं पर हिन्दी की किताब कभी नहीं खरीदते। एक बार मथुरादास ने उनसे पूछ लिया, "आप कभी हिन्दी की कोई किताब क्यों नहीं खरीदते?"

"हिन्दी की क्या किताब खरीदी जाए साहब? हिन्दी में है ही क्या? हिन्दी वाले पता नहीं क्या लिखते हैं।" वे अफसोस से बोले, "अब देखिए, अभी मैं अंग्रेजी की एक किताब लाया—'गॉड फादर। मारियो पूजो ने लिखी है। कितना अच्छा खाका खींचा है लेखक ने वहाँ के माफिया का। देखिए, माफिया तो हमारे यहाँ भी है पर लेखक क्या करते हैं?"

मथुरादास सोचने लगे, बात सच है, माफिया तो यहाँ भी है; लेकिन वह है उनका जो जगह-जगह हिन्दी की पत्तलें बिछाकर मिठाई खा रहे हैं। वे मिठाई खा रहे हैं। हिन्दी पत्तल की पत्तल बनी रह गई है। एक माफिया हिन्दी साहित्य सम्मेलन का है। एक नागरी प्रचारिणी सभा का। दोनों ही लम्बी-चौड़ी पत्तलें हैं, जिनसे न हिन्दी का सम्बन्ध है, न साहित्य का। कुछ दिनों से एक मजेदार घटना भी होने लगी है। एक ही पत्तल में दो लोग खाने को आमादा हैं। वे पत्तल को अपनी-अपनी तरफ खींचते हैं। जाहिर है इस खींचातानी में पत्तल फट गई। अब आधी-आधी पत्तल लेकर दोनों धड़े खुश हैं। वे जिस पत्तल में खाते हैं, उसमें छेद नहीं करते हैं, सिर्फ उसे फाड़ देते हैं।

मुद्राराक्षस जैसे हिन्दी-शत्रु पत्तल में छेद करते हैं। उन्हें भी आगे बढ़कर पत्तल फाड़ने की जोर आजमाइश करनी चाहिए। हिन्दी की सेवा इसी से होती है।

वैसे मथुरादास हिन्दी-प्रेमियों की इस शब्दावली पर फिदा हैं कि हिन्दी एक पत्तल है जिसमें हिन्दी वाले खाते हैं और छेद नहीं करते। पता नहीं निरालाजी या प्रसादजी इस पत्तल को देखते तो क्या कहते। हिन्दी-प्रेमी अपनी ही भाषा को किस मसखरे ढंग से देखते हैं। उनके लिए हिन्दी न तो रचना का माध्यम है, न संवाद का। वह सिर्फ खाने-पीने का साधन है। निरालाजी तो कहते, 'अगर हिन्दी पत्तल है तो मैं इस पर गोश्त खाऊँगा और इसे मोड़कर

घूरे पर फेंक दूँगा।' भाषा को खाने-पीने का साधन समझने वाला हिन्दी-प्रेमी भी अपनी पत्तल, हिन्दी के साथ यही सुलूक करता है। खाने-पीने के बाद वह इसमें छेद तो नहीं करता, मोड़कर कूड़े में फेंक आता है। आज आपको हिन्दी वहीं दिखाई देगी, जूठन से लिथड़ी, घूरे पर फेंकी पत्तल की तरह।

यकीन न हो तो विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग देख लीजिए। जूठन-भरी जितनी पत्तलें चाहें, आपको मिल जाएँगी। बानगी देख लीजिए, विश्व-विद्यालयों के हिन्दी विभागों में कुछ शोध-कार्य हुआ करता है। यह कार्य जूठन का अद्‌भुत नमूना है। कुछ विषय देखिए---'प्रेमचंद के नारी पात्र', 'नारी चरित्र और प्रेमचन्द', 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी', 'उपन्यासकार प्रेमचन्द और नारी चरित्र-चित्रण', 'प्रेमचन्द की दृष्टि में नारी' और 'नारी और प्रेमचन्द की दृष्टि' इत्यादि। इतनी महानता हिन्दी-प्रेमी में ही सम्भव है कि इन विषयों पर वे मोटे-मोटे शोध-ग्रन्थ लिख डालें और उन्हें डॉक्टरत्व की उपाधि सामूहिक रूप से नहीं, हर किसी को स्वतन्त्र रूप से मिल जाए।

मगर यह करिश्मा भी हिन्दी वालों का ही है कि वे अक्सर यह घोषित करते हैं कि हिन्दी में तकनीकी साहित्य नहीं है और यह आसानी से हो नहीं सकता।

ऐसी घोषणा करने से भारी लाभ होता है। पत्तल पर रखकर खाया जाने वाला पकवान ज्यादा स्वादु और भरपेट हो जाता है। अगर आप यह कहें कि हिन्दी में तकनीकी साहित्य लिखे जाने की क्षमता है तो हिन्दी वाला घबरा जाएगा। क्योंकि तब उसे विज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र, कानून आदि पर मौलिक किताबें लिखने का कष्ट उठाना पड़ेगा।

मौलिक लिखने से अनुवाद ज्यादा आसान है। अनुवाद हिन्दी में घरेलू उद्योग है जिसमें शत-प्रतिशत लाभ होता है, गाँठ से कुछ नहीं जाता। इस उद्योग के बहुत-से सहायक उद्योग भी हैं : जैसे तकनीकी शब्दावली निर्माण का उद्योग, पाठ्य-पुस्तक उद्योग। किसी जमाने में ये उद्योग निजी क्षेत्र में थे। अब वे पब्लिक सेक्टर में हैं। जो हाल हर सरकारी क्षेत्र के कारखाने का है, वही उनका भी है। बीसों बरस लग गए, अभी तकनीकी शब्दावली का कोष बन रहा है। वह बनेगा तो अनुवाद ज्यादा सफलता से हो सकेंगे।

मथुरादास सोचते रहे—कणाद, पाणिनि, शंकर, पतंजलि, नागार्जुन, भास्कर, चरक वगैरह किस 'ग्लासरी ऑव टेक्नीकल टर्मिनालॉजी' की मदद लेते होंगे। हो सकता है 'सेण्ट्रल हिन्दी डायरेक्टेरियेट' की तरह व्यासजी के काल में भी कोई निदेशालय खुला हो।

तो हिन्दी वालों को इन्तजार है कि पहले शब्दकोष बन जाए तब मौलिक लेखन शुरू हो। तब तक वह पत्तल बिछाकर अनुवाद की पूरियाँ खाएगा और दूसरी भाषाओं को कोसने की चटनी चाटेगा।

अंग्रेजी वालों ने पूरे देश में शिक्षा के कुछ स्कूल खोल रखे हैं : कॉनवेन्ट स्कूल या पब्लिक स्कूल। हिन्दी वाला सिर्फ नगर निगम के स्कूल चलाता है या फिर लाला छंगामल की पाठशाला। वह अच्छी पढ़ाई में विश्वास नहीं रखता, इसलिए कॉनवेन्ट स्कूल चलने देता है; वैसे हिन्दी स्कूल कभी नहीं खोलता और मजे से पत्तल चाटता रहता है।

हिन्दी भाषा-भाषी अब करीब तीस करोड़ हैं। पर हिन्दी के बड़े लेखकों की किताबें साल में तीन हजार नहीं बिकतीं। दूसरी भाषाओं के बड़े लेखकों की पचास-पचास हजार प्रतियाँ छपती हैं। हिन्दी की दो-दो हजार। हिन्दी का पत्तलवादी बीवी की नथुनी और झुमके खरीदता है, किताब नहीं। पिछले दिनों उत्तर प्रदेश में एक मन्त्री थे, खाद्य और रसद मन्त्री। वे जब तक मन्त्री रहे, खाद्य और रसद पर कभी कोई बयान नहीं देते थे। वे सिर्फ हिन्दी को लेकर रोते थे। उनका कहना था—हिन्दी के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है। वे हिन्दी के प्रति अन्याय पर रोते थे, पर हिन्दी की किताबें कभी नहीं खरीदते थे। वे हिन्दी की सेवा करते थे, पर हिन्दी में उन्होंने लिखा कुछ नहीं। हिन्दी में कुछ मौलिक लिखो भी नहीं, हिन्दी किताब भी मत खरीदो। सिर्फ पत्तल लम्बी-चौड़ी रखो, हिन्दी की यही सेवा है।

मथुरादास अक्सर सोचते हैं, हिन्दी-सेवा का मतलब क्या है? हिन्दी-सेवा कैसे की जाती है? हिन्दी-सेवा कमेटियों में घुस जाने से अपने-आप हो जाती है। विदेश में हिन्दी सम्मेलन हो तो स्वदेश के चन्दे से यात्रा कर आओ, हिन्दी-सेवा हो जाएगी। किसी जमाने में कहा जाता था कि गाय की दुम पकड़कर आदमी वैतरणी पार कर जाता है। हिन्दी-सेवी चतुर हैं। वह हिन्दी को नहीं, हिन्दी की दुम को खोजता है। जैसे गो-भक्त गोरक्षा समाज

तो बना लेता है, पर गाय को सड़कों पर कूड़ा खाने के लिए छोड़ रखता है। गाय की सेवा में तो खर्च भी होता है, शुभ भी। गोरक्षा समाज में लाभ-ही-लाभ है। खर्च कुछ भी नहीं है। हिन्दी-सेवी इसीलिए दुम हाथ से नहीं जाने देता। अक्सर दुम पर झगड़ा भी होता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हो गया। अब मुकदमा चल रहा है कि असली दुम किसके हाथ में है। यह मुकदमा क्यों चला? अच्छा साहित्य लिखने के लिए? या अच्छा शोध-कार्य करने के लिए? यह दोनों ही कारण नहीं हैं। पर मुकदमा चल रहा है जैसे किसी जायदाद का मुकदमा हो। बाकायदा दीवानी। यह हिन्दी-सेवा है।

भाषा की ऐसी सेवा का गुण पाणिनि नहीं जानते थे। वरना वे संस्कृत व्याकरण लिखने के बजाय 'संस्कृत साहित्य सम्मेलन' चलाते। उसका वार्षिक अधिवेशन होता। उसके सारे डेलीगेट गैर-लेखक होते और सम्मेलन का उद्घाटन कौशल राज्य का महामन्त्री करता तो अध्यक्षता मगध राज्य के राजा करते। यह सब करके पाणिनि बहुत-सी समितियों में घुस जाते। विश्व संस्कृत सम्मेलन जैसी कोई चीज सोच लेते तो मालामाल हो सकते थे, वरना सत्तू खाते मरे होंगे।

मथुरादास सोचते हैं, हिन्दी में एक अद्भुत ग्रन्थ रचना जरूर होनी चाहिए—पत्तल रहस्य। भाषा को पत्तल में बदल लेने की अद्भुत सिद्धि के अलावा पत्तल में क्या-क्या और कैसे खाया जा सकता है, इसका भी ब्यौरा इस किताब में होगा। दरअसल हिन्दी में जो चतुर लोग हैं, वे पत्तल के चक्कर में ही रहते हैं, भोंदू लोग अच्छा लिखने-पढ़ने में लगे रहते हैं। लिख-पढ़ तो कोई भी सकता है, पत्तल का कमाल सिर्फ कुछ ही लोग दिखा सकते हैं।

ब्लेड युग की साहित्यिक हरकतें

इधर देश में बड़ी-बड़ी घटनाएँ होने लगी हैं। देश इक्कीसवीं सदी में जा रहा है और हमने जगह-जगह कम्प्यूटर लगाना शुरू कर दिया है। दूरदर्शन ने कार्यक्रमों में लम्बे-लम्बे सीरियल चालू कर दिये हैं। लेखकों के बीच विज्ञापन एजेंसियों की तरफ भगदड़ शुरू हो गई है।

लेकिन साहित्य जगत में जैसी अफरातफरी टी० वी० के सीरियल को लेकर मची, वह अभूतपूर्व है। सीरियल का तो आनन्द ही अलग है। साहित्य लिखने में क्या रखा है। बहुत होगा तो सुधीर पचौरी खुश हो जाएँगे। और सुधीर पचौरी को आपने खुश कर भी लिया तो वे कौन-सी आपकी कटी उँगली पर डैश-डैश-डैश कर देंगे। बल्कि यह भी हो सकता है कि खुश उन्हें आप करें और डैश-डैश-डैश के लिए वे ही अपनी उँगली सामने कर दें। आप अपनी उँगली ज्यों-की-त्यों लिये बैठे रहिए।

यह भी सच है कि साहित्यकार हो तो उँगली कटती जरूर है। साहित्य-कारी की नियति है कि वह अपनी उँगली लिये सारिका से जनसत्ता तक और अंसारी रोड के प्रकाशकों से लेकर साहित्य अकादमी तक घूमता रहता पर डैश-डैश-डैश करने वाला नहीं मिलता।

सीरियल लिखने पर डैश-डैश-डैश की समस्या तुरन्त हल होती है। उँगली क्या समूचा हाथ काट लीजिए उस पर डैश-डैश-डैश करने वाले एक-से-एक महाजन मिल जाएँगे। कुछ लोग इस चक्कर में शरीर पर जगह-जगह ब्लेड मारते रहते हैं। और बार-बार डैश-डैश-डैश का सुख उठाते हैं। यकीन न हो तो सरापा लहूलुहान मनोहर श्याम जोशी को देख लीजिए। किसी जमाने के खासे यारबाश लेखक, अब अगर कभी मिलें तो आप उनकी घबराहट देखकर घबरा जाएँगे। हर वक्त कहीं-न-कहीं घाव मारे भागते दिखेंगे। आप पूछें, 'भाई कहाँ हैं? कैसे हैं?'